

श्रीमद् भगवद्गीता – दूसरा अध्याय

अनुक्रम

दूसरे अध्याय का माहात्म्य	1
दूसरा अध्याय: सांख्ययोग	3

दूसरे अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवान कहते हैं- लक्ष्मी ! प्रथम अध्याय के माहात्म्य का उपाख्यान मैंने सुना दिया। अब अन्य अध्यायों के माहात्म्य श्रवण करो। दक्षिण दिशा में वेदवेत्ता ब्राह्मणों के पुरन्दरपुर नामक नगर में श्रीमान देवशर्मा नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। वे अतिथियों के पूजक स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रों के विशेषज्ञ, यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले और तपस्वियों के सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्यों के द्वारा अग्नि में हवन करके दीर्घकाल तक देवताओं को तृप्त किया, किंतु उन धर्मात्मा ब्राह्मण को कभी सदा रहने वाली शान्ति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियों के द्वारा सत्य संकल्पवाले तपस्वियों की सेवा करने लगे। इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए। वे पूर्ण अनुभवी, शान्तचित्त थे। निरन्तर परमात्मा के चिन्तन में संलग्न हो वे सदा आनन्द विभोर रहते थे। देवशर्मा ने उन नित्य सन्तुष्ट तपस्वी को शुद्धभाव से प्रणाम किया और पूछा: 'महात्मन ! मुझे शान्तिमयी स्थिती कैसे प्राप्त होगी?' तब उन आत्मज्ञानी संत ने देवशर्मा को सौपुर ग्राम के निवासी मित्रवान का, जो बकरियों का चरवाहा था, परिचय दिया और कहा: 'वही तुम्हें उपदेश देगा।'

यह सुनकर देवशर्मा ने महात्मा के चरणों की वन्दना की और समृद्धशाली सौपुर ग्राम में पहुँचकर उसके उत्तर भाग में एक विशाल वन देखा। उसी वन में नदी के किनारे एक शिला पर मित्रवान बैठा था। उसके नेत्र आनन्दातिरेक से निश्चल हो रहे थे, वह अपलक दृष्टि से देख रहा था। वह स्थान आपस का स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्पर विरोधी जन्तुओं से घिरा था। जहाँ उद्यान में मन्द-मन्द वायु चल रही थी। मृगों के झुण्ड शान्तभाव से बैठे थे और मित्रवान दया से भरी हुई आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टि से पृथ्वी पर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूप में उसे देखकर देवशर्मा का मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़ी विनय के साथ मित्रवान के पास गये। मित्रवान ने भी अपने मस्तक को किञ्चित् नवाकर देवशर्मा का सत्कार किया। तदनन्तर विद्वान

देवशर्मा अनन्य चित्त से मित्रवान के समीप गये और जब उसके ध्यान का समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मन की बात पूछी: 'महाभाग ! मैं आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथ की पूर्ति के लिए मुझे किसी उपाय का उपदेश कीजिए, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।'

देवशर्मा की बात सुनकरक मित्रवान ने एक क्षण तक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा: 'विद्वान ! एक समय की बात है। मैं वन के भीतर बकरियों की रक्षा कर रहा था। इतने में ही एक भयंकर व्याघ्र पर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सब को ग्रास लेना चाहता था। मैं मृत्यु से डरता था, इसलिए व्याघ्र को आते देख बकरियों के झुंड को आगे करके वहाँ से भाग चला, किंतु एक बकरी तुरन्त ही सारा भय छोड़कर नदी के किनारे उस बाघ के पास बेरोकटोक चली गयी। फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्था में देखकर बकरी बोली: 'व्याघ्र ! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीर से मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न ! तुम इतनी देर से खड़े क्यों हो? तुम्हारे मन में मुझे खाने का विचार क्यों नहीं हो रहा है?'

व्याघ्र बोला: बकरी ! इस स्थान पर आते ही मेरे मन से द्वेष का भाव निकल गया। भूख प्यास भी मिट गयी। इसलिए पास आने पर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्र के यों कहने पर बकरी बोली: 'न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसका क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।' यह सुनकर व्याघ्र ने कहा: 'मैं भी नहीं जानता। चलो सामने खड़े हुए इन महापुरुष से पुछें।' ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँ से चल दिये। उन दोनों के स्वभाव में यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मय में पड़ा था। इतने में उन्होंने मुझसे ही आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्ष की शाखा पर एक वानरराज था। उन दोनों साथ मैंने भी वानरराज से पूछा। विप्रवर ! मेरे पूछने पर वानरराज ने आदरपूर्वक कहा: 'अजापाल! सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वन के भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो इसमें ब्रह्माजी का स्थापित किया हुआ एक शिवलिंग है। पूर्वकाल में यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान महात्मा रहते थे, जो तपस्या में संलग्न होकर इस मन्दिर में उपासना करते थे। वे वन में से फूलों का संग्रह कर लाते और नदी के जल से पूजनीय भगवान शंकर को स्नान कराकर उन्हीं से उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधना का कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समय के बाद उनके समीप किसी अतिथि का आगमन हुआ। सुकर्मा ने भोजन के लिए फल लाकर अतिथि को अर्पण किया और कहा: 'विद्वान ! मैं केवल तत्त्वज्ञान की इच्छा से भगवान शंकर की आराधना करता हूँ। आज

इस आराधना का फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया क्योंकि इस समय आप जैसे महापुरुष ने मुझ पर अनुग्रह किया है।

सुकर्मा के ये मधुर वचन सुनकर तपस्या के धनी महात्मा अतिथि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्ड पर गीता का दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मण को उसके पाठ और अभ्यास के लिए आज्ञा देते हुए कहा: 'ब्रह्मन् ! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-सम्बन्धी मनोरथ अपने-आप सफल हो जायेगा।' यह कहकर वे बुद्धिमान तपस्वी सुकर्मा के सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेश के अनुसार निरन्तर गीता के द्वितीय अध्याय का अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ का तपोवन शान्त हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदि की बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानों में भूख-प्यास का कष्ट भी जाता रहा तथा भय का सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्याय का जप करने वाले सुकर्मा ब्राह्मण की तपस्या का ही प्रभाव समझो।

मित्रवान कहता है: वानरराज के यों कहने पर मैं प्रसन्नता पूर्वक बकरी और व्याघ्र के साथ उस मन्दिर की ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्ड पर लिखे हुए गीता के द्वितीय अध्याय को मैंने देखा और पढ़ा। उसी की आवृत्ति करने से मैंने तपस्या का पार पा लिया है। अतः भद्रपुरुष ! तुम भी सदा द्वितीय अध्याय की ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करने पर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।

श्रीभगवान कहते हैं- प्रिये ! मित्रवान के इस प्रकार आदेश देने पर देवशर्मा ने उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरन्दरपुर की राह ली। वहाँ किसी देवालय में पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्मा को पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया और सबसे पहले उन्हीं से द्वितीय अध्याय को पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरण वाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा के साथ द्वितीय अध्याय का पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसा के योग्य) परम पद को प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी ! यह द्वितीय अध्याय का उपाख्यान कहा गया।

(अनुक्रम)

दूसरा अध्याय: सांख्ययोग

पहले अध्याय में गीता में कहे हुए उपदेश की प्रस्तावना रूप दोनों सेनाओं के महारथियों की तथा शंखध्वनिपूर्वक अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा रखने की बात कही गयी। बाद में दोनों सेनाओं में खड़े अपने कुटुम्बी और स्वजनों को देखकर,

शोक और मोह के कारण अर्जुन युद्ध करने से रुक गया और अस्त्र-शस्त्र छोड़कर विषाद करने बैठ गया। यह बात कहकर उस अध्याय की समाप्ति की। बाद में भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें किस प्रकार फिर से युद्ध के लिए तैयार किया, यह सब बताना आवश्यक होने से संजय अर्जुन की स्थिति का वर्णन करते हुए दूसरा अध्याय प्रारंभ करता है।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥१॥

संजय बोले: उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसूओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान मधुसूदन ने ये वचन कहा।(1)

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥२॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तवोतिष्ठ परंतप॥३॥

श्री भगवान बोले: हे अर्जुन ! तुझे इस असमय में यह मोह किस हेतु से प्राप्त हुआ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित है, न स्वर्ग को देने वाला है और न कीर्ति को करने वाला ही है। इसलिए हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा। (2,3)

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥४॥

अर्जुन बोले: हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूंगा? क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं।(4)

गुरुनहत्वा हि महानुभावा-

ञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव
भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥5॥

इसलिए इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं इस लोक में भिक्षा का अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ, क्योंकि गुरुजनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।(5)

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥6॥

हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिए युद्ध करना और न करना – इन दोनों में से कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे मुकाबले में खड़े हैं।(6)

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्भूदचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्नश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥7॥

इसलिए कायरतारूप दोष से उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिए कहिए क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिए आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिए।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं-
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥8॥

क्योंकि भूमि में निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामीपने को प्राप्त होकर भी मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले शोक को दूर कर सके।

संजय उवाच

**एवमुक्त्वा हृषिकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥9॥**

संजय बोले: हे राजन ! निद्रा को जीतने वाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज के प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्री गोविन्द भगवान से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये।(9)

**तमुवाच हृषिकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥10॥**

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज ने दोनों सेनाओं के बीच में शोक करते हुए उस अर्जुन को हँसते हुए से यह वचन बोले।(10)

श्री भगवानुवाच

**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥11॥**

श्री भगवान बोले: हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिए शोक करता है और पण्डितों के जैसे वचनों को कहता है, परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी पण्डितजन शोक नहीं करते। (11)

**न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥12॥**

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।(12)

**देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥13॥**

जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥14॥

हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत ! उसको तू सहन कर।(14)

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥15॥

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है।(15)

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥16॥

असत् वस्तु की सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा इन दोनों का ही तत्त्व देखा गया है। (16)

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥17॥

नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में भी कोई समर्थ नहीं है। (17)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥18॥

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गये हैं। इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन ! तू युद्ध कर। (18)

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥19॥

जो उस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥20॥

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है | शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥21॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है? (21)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥22॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है। (22)

नैनं छिदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥23॥

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती, इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थानुरचलोऽयं सनातनः॥24॥

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापि, अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है। (24)

अव्यक्तोऽयमचिन्तयोऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥25॥

यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन ! इस आत्मा को उपर्युक्त प्रकार से जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। (25)

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥26॥

किन्तु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरने वाला मानता है, तो भी हे महाबाहो ! तू इस प्रकार शोक करने को योग्य नहीं है। (26)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्योऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥27॥

क्योंकि इस मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपाय वाले विषम में तू शोक करने के योग्य नहीं है। (27)

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥28॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मरने के बाद भी अप्रकट हो जाने वाले हैं, केवल बीच में ही प्रकट है फिर ऐसी स्थिति में क्या शोक करना है? (28)

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्भवति तथैव चान्यः।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रुणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥29॥

कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्व का आश्चर्य की भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता। (29)

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥30॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीरों में सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियों के लिए तू शोक करने के योग्य नहीं है। (30)

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धम् र्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥31॥

तथा अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे भय नहीं करना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। (31)

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥32॥

हे पार्थ ! अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वाररूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। (32)

अथ चेत्वमिमं धम् र्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥33॥

किन्तु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।(33)

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥34॥

तथा सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति भी कथन करेंगे और माननीय पुरुष के लिए अपकीर्ति मरण से भी बढ़कर है।(34)

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥35॥

और जिनकी दृष्टि में तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध में हटा हुआ मानेंगे।(35)

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥36॥

तेरे वैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे। उससे अधिक दुःख और क्या होगा?(36)

हतो व प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥37॥

या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा।(37)

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥38॥

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।(38)

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्धया युक्तो यथा पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥39॥

हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञानयोग के विषय में कही गयी और अब तू इसको कर्मयोग के विषय में सुन, जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को भलीभाँति त्याग देगा अर्थात् सर्वथा नष्ट कर डालेगा।(39)

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥40॥

इस कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा सा भी साधन जन्म मृत्युरूप महान भय से रक्षा कर लेता है। (40)

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥41॥

हे अर्जुन ! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है, किन्तु अस्थिर विचार वाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं।(41)

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥42॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥43॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥44॥

हे अर्जुन ! जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफल के प्रशंसक वेदवाक्यों में ही प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्ग से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है- ऐसा कहने वाले हैं, वे अविवेकी जन इस प्रकार की जिस पुष्पित अर्थात् दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं जो कि जन्मरूप कर्मफल देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है, उस वाणी द्वारा जिनका चित हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती। (42, 43, 44)

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥45॥

हे अर्जुन ! वेद उपर्युक्त प्रकार से तीनों गुणों के कार्यरूप समस्त भोगों और उनके साधनों का प्रतिपादन करने वाले हैं, इसलिए तू उन भोगों और उनके साधनों में

आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु परमात्मा में स्थित योग-क्षेम को न चाहने वाला और स्वाधीन अन्तःकरण वाला हो।(45)

**यावारनर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥46॥**

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।(46)

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥47॥**

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उनके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।(47)

**योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥48॥**

हे धनंजय ! तू आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्वभाव ही योग कहलाता है। (48)

**दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥49॥**

इस समत्व बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणी का है। इसलिए हे धनंजय ! तू समबुद्धि में ही रक्षा का उपाय ढूँढ अर्थात् बुद्धियोग का ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।(49)

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥50॥**

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जा। यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।(50)

**कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्तवा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥51॥**

क्योंकि समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।(51)

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥52॥**

जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को भली भाँति पार कर जायेगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आने वाले इस लोक और परलोकसम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा।(52)

**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥53॥**

भाँति-भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर ठहर जायेगी, तब तू योग को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जायेगा।

**अर्जुन उवाच
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥54॥**

अर्जुन बोले हे केशव ! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?(54)

**श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।**

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥55॥

श्री भगवान् बोले: हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।(55)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥56॥

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन पर उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥57॥

जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। (57)

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥58॥

और जैसे कछुवा सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों के सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है। (ऐसा समझना चाहिए)।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥59॥

इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है। (59)

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥60॥

हे अर्जुन ! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं।(60)

**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥61॥**

इसलिए साधक को चाहिए कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो जाती है। (61)

**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥62॥**

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।(62)

**क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥63॥**

क्रोध से अत्यन्त मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।(63)

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥64॥**

परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तः करणवाला साधक अपने वश में की हुई, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।(64)

**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥65॥**

अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर परमात्मा में ही भली भाँति स्थिर हो जाती है।(65)

**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥66॥**

न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है?(66)

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥67॥**

क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है।(67)

**तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥68॥**

इसलिए हे महाबाहो ! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।(68)

**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥69॥**

सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि के समान है।

**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।**

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥70॥

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं। (70)

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥71॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्ति को प्राप्त है।(71)

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥72॥

हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥2॥
इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद्गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में 'सांख्ययोग' नामक द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण हुआ।